

माँ की कोई चिट्ठी नहीं

विश्वप्रिया एल. अयंगर



जून...

मॉनसून वृक्षों का गला पकड़ चुका था और पत्तों को हिलाकर कीचड़ भरे गड्ढों में गिरा रहा था। मेरे पैर में क्रेप रबर के नए जूते थे। उन्हें पहने में धीरे-धीरे पट-पट करती लकड़ी की सीढ़ी चढ़ गई।

शुक्रवार, बैंगलोर...

नई दिल्ली अब गर्म हो चली होगी। डायनिंग टेबल पर लीची, चैरी और आलूबुखारा के गुच्छे पड़े होंगे। मेरी बहन हँस रही होगी। अप्पा अदालत से वापस आ गए होंगे और साथ में बीयर की ठण्डी बोतलें और ग्लैडियोलाइ लाए होंगे। उनके काले कोट पर लाल

फूल खूब फबते हैं।

“पवित्र माँ मैरी धन्य है तेरे गर्भ का फल...” मुझे देर हो गई थी। “हमेशा ही देर से,” सिस्टर फ्रांसिस विल्लार्ड, “निश्चित रूप से तुम पिछले जनम में कछुआ रही होगी।” चिट्ठियाँ आ गई थीं। लाल थैला जिस पर कढ़ाई से जंगी जहाज़ बना हुआ था पूरा भरा था। अब डाक टिकटों को लेकर एक युद्ध होगा।

उस थैले से फ्रांस, जापान, पुर्तगाल, मोरॉक्को, अल्जीरिया, सूडान, मलावी, तांज़ानिया, इथियोपिया, कैन्या, कुवैट, दुबई, बाहरेन, मिस्त्र, सिंगापुर, फिलिपींस, थाईलैण्ड, आयरलैण्ड और न्यूज़ीलैण्ड से भेजी गई चिट्ठियाँ निकलती थीं। चिट्ठियाँ काश्मीर, कुर्ग, बम्बई और कलकत्ता से भी आती थीं। लेकिन इनके कारण कोई झगड़े न होते, इनके टिकट आम थे।

सिस्टर फ्रांसिस मंत्रों की तरह नामों को पढ़ देतीं और चिट्ठियों को इस तरह से हाथों में देतीं मानो वे बादाम-शहद की पेस्ट्रीज़ हों। सबसे अच्छे मित्र भी अलग हो जाते, भागकर बैठ जाते, कहीं किसी कोने की सूरज की रोशनी में, या फिर कहीं छॉव में।

साइगॉन की लड़की को कभी कोई खत नहीं आया। वह हमारी तरफ पीठ करके खड़ी थी, हाथों को भींचे। उसके पिता वियतनामी थे और माँ तमिल। फैब्युला कभी किसी से बात नहीं करती, न कभी हँसती और न

कभी उसके पास च्युइंगम, चॉकलेट या सुन्दर पेंसिल और रबर जैसी विदेशी चीज़ें होतीं।

हमारी कल्पना में वियतनाम मूक रह गया था। उसकी फ्रॉक में शिफॉन की सिलवटें थीं, लेकिन वे धुलाई से जर्जर हो गई थीं। धोबी ने कपड़े को थोड़ा जला भी दिया था, इसलिए यह पोशाक अब ‘विदेशी’ न लगती थी।

शमा, जिसके पिता नागरकोइल में कलेक्टर थे, ने रात को खाना खाते समय फैब्युला से कहा, “तुम झूठ बोल रही हो, तुम विदेशी नहीं हो, वियतनाम कहीं नहीं, तुम भारतीय हो। वियतनाम का कोई एक टिकट तो दिखा दो।”

फैब्युला उठ खड़ी हुई और बेकाबू हो चीखी, “वहाँ युद्ध चल रहा है।”

शमा ने हँसते हुए कहा, “युद्ध तो और कई जगह भी हो रहे हैं लेकिन अभी भी लोगों को चिट्ठियाँ मिल रही हैं...।”

फैब्युला ने शमा के चेहरे पर अपना कस्टर्ड फेंक दिया और अजीब ढंग से हॉफते हुए चिल्लाना शुरू कर दिया, “वहाँ हर जगह नापाम है, नापाम...।”

फ्रांसिसी नन आई और फ्रेंच में कुछ बुदबुदाती हुई फैब्युला को लेकर चली गई। फैब्युला ने भी उसी भाषा के टूटे-फूटे शब्दों में कुछ जवाब दिया, इसलिए हमने यह मान लिया कि वह वास्तव में एक विदेशी थी। आज शमा भारतीय विदेश सेवा में, न्यू यॉर्क

स्थित संयुक्त राष्ट्र में हमारी प्रतिनिधि है, और वियतनाम के कन्दरों में नापाम के इस्तेमाल पर बहस का उसने नेतृत्व किया था।

बोगनविलीया ने अपनी गहरी लाल पँखुड़ियों से हमारे मुलायम साँवले गालों पर से बारिश की बूँदों को झाड़ दिया, रजनीगन्धा मैडोना के पैरों पर उग आई। हम लोगों ने केन्या से आई इंग्लिश टॉफी खाई।

शमा ने कहा, “नापाम एक तरह का विक्स है, मलेशियाई टाईगर बाम की तरह। हो सकता है फैब्युला अनाथ हो, और शायद इसी के चलते फ्रांसिसी नन हमेशा उसके पीछे लगी रहती हैं।”

फैब्युला तनी हुई और स्तब्ध, लाल थैले के पास लौट गई, वह बहुत घबराई हुई थी। फैब्युला को चिट्ठी मिलने का डर था।



अप्पा मुझे लम्बी-लम्बी चिट्ठियाँ लिखते थे। उन सारी चिट्ठियों में बीरबल, तेनाली रामन और कौटिल्य की कहानियाँ होती थीं। कोई भी उनके बीजगणित के किस्से सुनाने के उत्साह को कम नहीं कर पाया था। जब कभी मुझे बुरे अंक मिलते तो उनके पास मेरे लिए कोई तुकबन्दी, कहानी या मुहावरा होता। अगर मैंने कोई बहुत ही बुरा काम किया होता जिसके लिए मुझे कलंकित किया जाता तो ग्लैडस्टोन या डिज़रैली मेरी मदद करने पहुँच जाते। सुन्दर लिफाफे होते थे, उन पर सुप्रीम कोर्ट बार असोसिएशन के कोट होते थे - 'नम्र बनें, निश्चई बनें, विचारशील बनें'। अप्पा के विशेषण पन्नों से जैसे उड़ते थे, उनकी चिट्ठियाँ मज़ेदार होती थीं, लेकिन हमेशा वो गाँधीजी वाला टिकट। डाक टिकट इकट्ठा करने वालों के बीच मेरी चिट्ठियों के कारण कोई हलचल न मचती। एक भूतहा पेड़ की लम्बी गाँठदार, नम, भूरी डालों के झूले में बैठ, जगमगाती पत्तियों की ज़रदोज़ी हरी-हरी रोशनी में मैं उन चिट्ठियों को पढ़ती। महापुरुषों की संगति में मैंने कहना सीखा, "भाड़ में जाओ...!"

हाल में मैंने वैसा कुछ भी नहीं किया था जिससे मुझे सहानुभूति वाली प्रतिक्रिया मिलती। इसलिए अप्पा अपने कथनीय कथनों का पिटारा न खोल पाए और कुछ उबाऊ बनने लगे थे, ठीक नेहरू की तरह। उन्हें बताने में

मुझे झिझक थी कि पुस्तकालय में मैं इंदिरा के नाम उन पत्रों को पढ़ चुकी थी - कोई खास मज़ेदार नहीं थे वे, शब्द भी मसालेदार नहीं थे। वे उन उबाली हुई सब्जियों की तरह थे, जो बीमार होने पर दी जाती हैं। रसोईघर के मसालों की तरह मैं गर्म मर्मभेदी शब्द चाहती थी, लौंग के साथ भुने गए बैंगन की सुगन्ध की तरह।

माँ कभी मुझे चिट्ठी नहीं लिखती थी। माँ हमेशा महिला लेखकों के कन्नड़ उपन्यास देर रात पढ़ती थी; जब उसे लगता था कि सभी सो गए तो वो ज़ोर-ज़ोर से पढ़ा करती थी। बारिश हो रही थी, मुझे वह अंश आज भी याद है:

गहरी रात, दुख से भीगे पदचिह्न पुरी दुनिया में उस वृत्त का अर्थ ढूँढ़ते हैं, प्रेम से सुगन्धित फूल तुम्हारे पदचिहनों पर उगते हैं, एक साँप आता है और तुम्हारे इत्र के पात्रों की रक्षा करता है, तुम्हारी अनुपस्थिति का प्रत्येक क्षण, तुम्हारी दूरी का प्रत्येक मील धरती पर रसीली लाल पंखुड़ियों को अंकुरित करता है। ढूँढ़ो प्रिये, अर्थों को... पागलपन और निराशा की हदों तक ढूँढ़ो क्योंकि हर जगह फूल तुम्हारे पदचिहनों पर उग रहे हैं। तुम्हारी देह मेरी स्मृति में सुगन्ध के अंगों की तरह बढ़ रही है। पलक की तरह, यह दरवाज़ा खुला हुआ है, अर्थों की मोटी घिरनियों के साथ लौट आओ, प्रिये, प्रेम के स्वर्ण गोधूम संग लौट आओ, उन गाथाओं के साथ लौट आओ जो

तुम्हारे कण्ठ को घण्टियों में तब्दील कर देती हैं। यह दुनिया लोहे का एक घेरा है; क्या कमल पागलपन के दलदल या निर्मल झरनों में उगता है? यह आँख खुली हुई है और तुम्हारी आँखों में अनन्त अर्थों को शह देने का इन्तज़ार करती है। यहीं है दुनिया की चौखट।

यह अंश उन कई अंशों में से एक था, जिन्हें माँ लौह दरवाज़ों की तरह बीच रात खोलती थी जब घर मुलायम रज़ाई ढँके हुए सो रहा होता। उसकी आवाज़ गम्भीर थी, जो बेथोविन की तरह हवा में गूँजती थी। अनोखी कलियों की तरह मेरी स्मृति में दबी थी।

मैंने माँ से निराशा के क्षणों में आत्मसम्मान को कुचलना सीखा, जुमलों को तीव्रता से फहराना सीखा और कैद में सुगन्ध फैलाने के लिए उनको उकसाना सीखा। मैं चाहती थी कि उसके गोलमोल शरीर की गर्म गुफा में घुस जाऊँ और सिमसिमाती हुई अपनी तनहाई को उसके देर रात के शब्दों के संगीत में शान्त करूँ, लेकिन उसने मुझे कभी नहीं लिखा।

“ईश्वर की पवित्र माँ मैरी धन्य है



आपके गर्भ का फल...।” जैम्बिया की ज़रीना कलकत्ता की बीना की तरफ रिगली स्पीयरमिंट की एक च्युइंगम बढ़ा रही थी। मेरी आशा थी कि अप्पा को बुरा न लगा हो - मैंने गत रविवार को ही रोलदार कागज़ पर साफ-साफ लिख दिया था,

अप्पा प्लीज़,

मैं आपसे भीख माँगती हूँ, अम्मा से कहिए वह मुझे एक चिट्ठी लिखे... कुछ भी लिखे, उससे कहिए वह चिल्ला भी सकती है। मुझे डॉटने को कहिए - मैंने पिछले सप्ताह अंकगणित का होमवर्क पूरा नहीं किया था, मैं क्लास में काफी बात करती हूँ, मेरे कैड्स पूरी तरह सफेद नहीं हुए थे, मैं काम करने में पूरी आलसी हूँ, मैं हर चीज़ के लिए हमेशा देर से आती हूँ। भूगोल के समय मैं हमेशा जहाज़ पर चढ़कर डाक टिकटों पर दर्ज जगहें घूमने के खाब देखती रहती हूँ। मैं वियतनाम जाना चाहती हूँ और अपने सीने पर नापाम मलना चाहती हूँ क्योंकि मुझे जुखाम हुआ है। मैं बरसात के मौसम में अपनी ऊनी गंजी नहीं पहन रही हूँ, अम्मा से बोलिए वह गुस्सा करे।

अम्मा जोश से चिल्लाती, वो रूपकों को एक लोहे के करछुल से पुलियोगारे गोज्ज (एक पारम्परिक मसालेदार इमली चावल) में बदल देती। रसोईघर में मैं उससे टकराई, वो चिल्लाई, “क्या तुम्हारी आँखों में आलू उग रहे हैं?” उसने मुझे अपनी बहन से एक लड़की के बारे में कुछ बुरा कहते हुए सुन लिया और वह चिल्ला उठी, “संडास में पत्थर फेंकोगे, तुम्हारे चेहरे पर उसके छींटे उड़ेंगे।” मुझे लगा वह काफी गुस्सा गई होगी, पलटकर मुझे कड़ी फटकार लगाएगी, पके शब्दों की फलभरी कटोरी से, मसालेदार ढंग से।

बोर्डिंग स्कूल के मेरे तीन सालों में माँ ने कभी मुझे कोई चिट्ठी नहीं लिखी थी। मनकों की माला सिस्टर फ्रांसिस के लाल दाग वाले हाथ में घूम रही थी, “पवित्र मैरी...” बीना और ज़रीना एक-दूसरे के च्युइंगम के बुलबुलों को चूमकर फोड़ रही थीं... “...आपके गर्भ का फल...”।

कहीं अप्पा ने ये न सोचा हो कि मैं पगला गई हूँ। उनसे अर्थपूर्ण बातचीत मुझे पसन्द थी लेकिन उनकी वो नेहरू-जैसी चिट्ठियाँ स्टार्च लगाए रूमालों की तरह थीं, अम्मा के कोमल महीन पल्ले की तरह तो बिलकुल नहीं जो मुँह पोंछते समय होठों को जैसे चूम लेता था। अम्मा के रोम-रोम में कहानियाँ भरी हुई थीं, अपने पिछले जन्म में वे वाल्मिकी रही होंगी। “पलकों की तरह यह दरवाज़ा खुला हुआ है... यह दुनिया का द्वार है।”

मैं कुछ स्याह, कुछ चमकीली, कुछ भीगी हुई भाषा चाहती थी, नहाकर निकली हुई माँ जैसी। मुझे अकेलापन महसूस हो रहा था, मैं आजकल खुद से बतियाती थी, छवियाँ कविताओं की ओर बढ़ रही थीं, हर रात मैं रोती थी। मैं किसी को अपनी बाहों में भरना चाहती थी, अपनी साँसों में किसी की साँसों को समाना चाहती थी। बच्चों के सपनों से खचाखच भरी बड़ी डॉर्मिटरी से मुझे डर लगता था। मैं झुण्ड से भाग रही थी।

“पिता, पुत्र और पवित्र प्रेत के नाम से... आमीन।” लाल थैला गर्भवती

महिला के पेट की तरह गोल व फूला हुआ था। चिट्ठियाँ गिरने लगीं - जाम्बिया, इथियोपिया, पुर्तगाल, मलेशिया, सिंगापुर... डाक टिकटों के कारण नए गठबन्धन बने, दोस्त भिड़ गए, जहाँ प्यार हुआ करता था वहीं झगड़े होने लगे थे। मैं अपने छोटे-से जहाज़ में दुनिया के चित्र में उतरना चाहती थी, पलकों की तरह मेरे दरवाज़े खुले हुए थे। चिट्ठी पर सुप्रीम कोर्ट बार असोसिएशन के चिह्न नहीं थे, मेरा नाम एक ढिलमिल बचकानी लिखावट में था जो फूहड़ लग रही थी। लिफाफे से लौंग, सेके गए बैंगन और साँसों की रज़ाई में बीच रात की एकलाप की गन्ध आ रही थी।

माँ ने मुझे एक चिट्ठी लिखी थी। अपनी खुशी में नाम बुलाए जाने पर फैब्युला की कॅपकपाहट, उसका मिलिटैरी परेड की तरह पलटकर गोलियों की शहादत की तरफ चलना दर्ज तक न हुए। अपनी उत्सुकता में मैंने वियतनामी टिकट भी नहीं देखा।

चिट्ठी मेरी जेब में गर्म थी, साँस ले रही थी। अभी भी बारिश हो रही थी, मैं भूतहे पेड़ तक नहीं जा सकती थी और जैसे भी वो जगह अप्पा की चिट्ठियों के लिए थी। मुझे इसे पढ़ने के लिए एक खास जगह ढूँढ़नी थी। उस रात मैं अपने कम्बल के नीचे घुस गई, टॉर्च जलाया और उस लौंग की गन्धवाले लिफाफे को खोला।

अम्मा ने लिखा था,

मेरी प्रिय इप्पिया,

तुम्हारी चिट्ठी दिनांक...के लिए बहुत धन्यवाद। कृपया तुम किसी चीज़ की विनती न करना, मुझसे एक चिट्ठी की भी नहीं। अप्पा अँग्रेज़ी में अच्छी चिट्ठियाँ लिखते हैं। उसे स्वीकार करो। मैं अँग्रेज़ी में नहीं लिख सकती हूँ। तुम्हारे टीचर मेरी अँग्रेज़ी का मज़ाक उड़ाएँगे, इसलिए मैं तुम्हें फिर से नहीं लिखूँगी। हम तुम्हें आलूबुखारे भेज रहे हैं, कृपया इसे मित्रों में बाँट देना। बुरी लड़की मत बनो, आलसी मत बनो, भूगोल की क्लास में सपने मत देखो। मुझको फिर से लिखने के लिए मत कहो।

सप्रेम,

अम्मा

हर रात की तरह मैं उस रात भी रोई, शायद थोड़ा ज़्यादा। इस बात को समझने की मेरी उम्र न थी कि उपनिवेशीकरण ने माँ और बच्चे के बीच के बन्धन को काट दिया था। दुनिया की चौखट मेरी आँतों में दर्द की ऐंठन बन गई थी। मैंने माँ को कभी माफ नहीं किया लेकिन कुछ समय बाद मैंने खुद अपने बीच रात के दरवाज़ों को खोलना सीखा, ज़ब्त कर ली गई भाषा के पैरों के निशान की खोज में...

मैंने अपने आँसुओं को चिट्ठी से पाँछा, गूदे के भीगे गोले को चबाते हुए मैं और गोल बनाती गई। मैंने अप्पा को दूसरे ही दिन एक समझदार चिट्ठी लिखी।



साइगॉन की फैब्युला सुबह न उठी, हमने नन को चूहे के ज़हर के बारे में कुछ बुदबुदाते हुए सुना, कोई नहीं जानता था कि उसकी चिट्ठी में क्या

लिखा था। लेकिन अब सब जान गए थे कि वियतनाम का वजूद कायम है, हर कोई टिकट को देख चुका था, मुझे छोड़कर।

विश्वप्रिया एल. अयंगार: सामाजिक कार्यकर्ता और लेखक। केरल के मछुआरों और तमिल नाडु के बच्चों की सामाजिक व आर्थिक परिस्थितियों पर काम किया है।

अँग्रेज़ी से अनुवाद: मनोज कुमार झा: विज्ञान में स्नातकोत्तर। दो कविता संग्रह और कई साहित्यिक अनुवाद प्रकाशित हो चुके हैं। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में कविताएँ एवं आलेख प्रकाशित होते रहे हैं। दरभंगा, बिहार में रहते हैं।

सभी चित्र: नरेन्द्रन नायर: एम.एस. यूनिवर्सिटी, बड़ौदा से चित्रकला में स्नातक कर रहे हैं। बच्चों की किताबों के लिए चित्रकारी करने में विशेष रुचि।

यह कहानी पहली बार *In Other Words: New Writing by Indian Women, Kali for Women*, नई दिल्ली, 1992 द्वारा प्रकाशित।

